E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

स्थितप्रज्ञ का वर्णन

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

समस्त मानवता का आदर्श स्थितप्रज्ञ व्यक्ति माना जाता है। आत्मज्ञ, ईश्वर के साथ तद्रूपता स्थापित करने वाले व्यक्ति, स्थितप्रज्ञ, ब्रह्मभूत, त्रिगुणातीत, ब्राह्मी स्थिति सम्पन्न पुरुष तथा भक्त कहलाते हैं। गीता में ऐसे सिद्ध पुरुष के लिए अनेक संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है; किन्तु तथ्यतः या तत्त्वतः वे सब एक ही हैं। इनमें स्थितप्रज्ञ मानव जीवन का सर्वोच्च मूल्य है। स्थितप्रज्ञ शब्द और इसकी भावना गीता की अपनी विशिष्टता है। गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा है-भगवन् स्थितप्रज्ञ पुरुष के क्या लक्षण है? वह कैसे बोलता है? उसकी भाषा कैसी है? वह किस तरह बैठता और चलता है?-

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।

स्थितप्रज्ञ का सामान्य अर्थ है- वह व्यक्ति, जिसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि स्थिर हो जाय। कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति समाधि में स्थिर हो, वह स्थितप्रज्ञ है। कुछ लोग स्थिरबुद्धि अर्थात् स्थितधीः को स्थितप्रज्ञ कहते हैं, किन्तु गीता में इन सबों का भेद अलग-अलग निरूपित किया गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा- मन में उत्पन्न होने वाली इन्द्रियतृप्ति की समस्त कामनाओं का जिसने त्याग कर दिया हो और जिसकी विशुद्ध मन और आत्मा सहज प्राप्य वस्तुओं से सन्तुष्ट हो, ऐसी विशुद्ध एवं दिव्य चेतना को प्राप्त व्यक्ति ही 'स्थितप्रज्ञ' कहलाता है-

प्रजहाति यदि कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्य तदोच्यते।।

वस्तुतः यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को ज्ञान का प्रकाश देकर मोहत्याग का उपदेश करते हैं, तत्पश्चात् कामना रहित होकर कर्म करने का अर्थात् निष्काम कर्म का उपदेश देते हैं। निष्काम कर्म करने वाला कर्मयोगी स्थितप्रज्ञ अवस्था प्राप्त होने पर सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा में आत्मबोध करते हुए आनन्दानुभूति करता है। मन की समस्त कामनाओं एवं वृत्तियों का नाश होने पर आत्मा ही अवशिष्ट रह जाता है। आत्मा में आत्मा के द्वारा सन्तुष्ट होना साधारण सन्तोष-वृत्ति का सूचक नहीं है बल्कि आत्माराम अवस्था का सूचक है। स्वयंप्रकाश चैतन्यस्वरूप आत्मा के साक्षात्कार का आनन्द अनिर्वचनीय होता है। चैतन्यस्वरूप आत्मा स्वयं आत्मा से ही प्रकाशित होता है। आत्मानुभुति अथवा अमृतत्वानुभूति होने पर संसार के विषय-सुख नीरस प्रतीत होने लगते हैं तथा मोह एवं कामना स्वतः छूट जाते हैं। यही सच्चा वैराग्य है। वैराग्य का अर्थ संसार से पलायन करना नहीं है, बल्कि मोह और कामना का त्याग करना है। श्रीकृष्ण गीता में बारम्बार कामना परित्याग का उपदेश देते हैं। पूर्णतः निष्काम व्यक्ति अपनी अन्तर्प्रेरणा के अनुसार कर्म करता है। उसकी कर्तव्यनिष्ठा अन्तःप्रकाश से आलोकित हो जाती है तथा उसका कर्म सहज हो जाता है। कर्मयोगी की निष्काम बुद्धि भागवत-चेतना का केन्द्र बनकर भागवत इच्छा का उपकरण बन जाती है। स्थितप्रज्ञ अवस्था कर्मयोग की चरमावस्था है।

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण स्थितप्रज्ञ के भाषण के विषय में प्रश्न करते हुए पूछा है है-'स्थितधीः किं प्रभाषेत' अर्थात् स्थिरबुद्धि वाला पुरुष कैसर बोलता है? इस प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण ने दो श्लोकों में दिया है। पहला श्लोक है-

दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

अर्थात् दुःखों में जो न घबड़ाये, सुखों में जिसे किसी तरह की स्पृहा न हो, आसक्ति, भय या क्रोध से जो मुक्त हो, उसे 'स्थितधी' कहा जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष का मन दुःखों में व्याकुल नहीं होता तथा सुखों में लालसा (यह तृष्णा की सुख सदा मिलता ही रहे) से रहित होता है, जो राग, भय और क्रोध से मुक्त है,

ऐसा मुनि (मननशील महापुरुष) स्थितप्रज्ञ कहलाता है। वह प्रत्येक अवस्था में अपने भीतर परमशान्त अथवा आनन्दमग्न रहता है तथा सुख और दुःख उसे विचलित नहीं करते।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मनुष्य दुःख और सुख से ऊपर उठकर प्रत्येक स्थिति में सम रहता है, वही उनके प्रभाव से मुक्त हो सकता है। मनुष्य के जीवन में दुःख और सुख तो अवश्य आयेंगे, किन्तु यदि दुःख में वह बौखला न जाए और सुख में बौरा न जाए तो वह सचमुच महान् है। ऐसा मननशील पुरुष (मुनि) वन्दनीय होता है। जो मनुष्य समस्त मनोगत कामनाओं को समूल नष्ट कर देता है तथा आत्मा द्वारा आत्मा में ही मग्न रहता है, वह स्थितप्रज्ञ होता है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति दुःख में उद्विग्न नहीं होता, सुख में स्पृहा नहीं करता। स्पृहा (तृष्णा) कामना का सूक्ष्म रूप होता है। सुख की स्पृहा से मुक्त होकर मनुष्य राग-द्वेष, भय और क्रोध से सदैव विमुक्त रहता है। कर्मयोगी सदा शान्त और धैर्यवान् रहता है। ब्रह्म को सत् और संसार को असत् मानने पर भौतिक दुःख-सुख मिथ्या प्रतीत होने लगते हैं। आध्यात्मिक आनन्द की उपलब्धि एवं अनुभूति होने पर सांसारिक विषयों के सुख नीरस और निस्सार प्रतीत होने लगते है तथा दुःख कठिन और क्लेशप्रद नहीं रहते। कर्मयोगी सदैव समबुद्धि अथवा समरस रहता है।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं-

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तप्राप्य शुभाशुभम्।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

अर्थात् को मनुष्य सर्वत्र अनासक्त होता हुआ अनेक शुभ और अशुभ वस्तुओं को प्राप्त होकर न हर्षित होता है न उदास होता है, वह स्थितप्रज्ञ है।

वस्तुतः स्थितप्रज्ञ महापुरुष के लक्षणों की चर्चा करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि उस व्यक्ति कको स्थितप्रज्ञ या स्थिरबुद्धि कहा जाता है, जो प्रिय अथवा अप्रिय, अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थिति में अनासक्ति के कारण सर्वदा समान रहता है। सानान्य न संसार में इतने आसक्त रहते हैं कि बहिर्जगत् में थोड़ी-सी अनुकूलता होने पर अतिहर्षित तथा थोड़ी सी प्रतिकूलता होने पर अति खिन्न हो जाते हैं। वास्तव में, जो मनुष्य आध्यात्मिक मूल्यों में प्रगाढ विश्वास रखते हैं और उनकी अपेक्षा भौतिक

सम्पदा को तुच्छ समझते हैं, वे बाह्य घटनाओं के अनुकूल तथा प्रतिकूल होने पर, सुखद या दुःखद परिस्थिति प्राप्त होने पर, विचलित नहीं होते। वास्तव में, जो लोग बहिर्मुखी होकर बाहर की दुनिया को सब कुछ समझकर उसी से प्रेरणा लेते हैं तथा उसी में लिप्त रहते हैं, वे जीवनभर भय, चिन्ता और विषाद से घिरे हुए तथा अशान्त होकर भटकते रहते हैं। इसके विपरीत जो लोग अन्तर्मुखी अपने भीतर सुन्दर विचारों एवं उत्तम आदर्शों की सुमनवल्लरी से अनुप्राणित होते हैं तथा उसी में रमे रहते हैं, वे जीवनभर निर्भय, निश्चिन्त और सुप्रसन्न होकर शान्त और सम रहते हैं। मनुष्य कर्म की प्रेरणा बाहर के भौतिक पदार्थों से लेने पर दुःखी और भीतर के आदर्शों से लेने पर सुखी रहता है। बहिर्जगत् की घटनाओं से अप्रभावित रहकर ही मनुष्य समरस रह सकता है तथा सन्मार्ग पर दृढ रह सकता है। वास्तव में बाहरी घटनाओं से विचलित न होकर अर्थात् समत्वभाव में स्थित होकर कर्म करते रहना एक कला है। स्थितप्रज्ञ महात्मा सुख-दुःख से ऊपर उठकर सदा एकरस रहता है।

अर्जुन ने श्रीभगवान् से स्थितप्रज्ञ के विषय में तीसरा प्रश्न यह पूछा था कि-'किमासीत' अर्थात् स्थितप्रज्ञ पुरुष कैसे बैठता है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

अर्थात् जिस प्रकार कच्छप (कछुआ) अपने अङ्गों को सब ओर से अपने भीतर समेट लेता है, उसी प्रकार मनुष्य जब अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषय में अपने भीतर ही समेट लेता है, वह स्थितप्रज्ञ होता है।

यहाँ इन्द्रिय संयम पर बल दिया गया है। संसार में इन्द्रियों के विषय (भोग्य पदार्थ) सर्वत्र विद्यमान हैं। जब मनुष्य का मन राग अथवा आसक्ति से भरा हुआ होता है, वह इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर दौड़ाने लगता है तथा इन्द्रियों के स्वेच्छाचार के कारण मनुष्य की बुद्धि भटक जाती है। जिस मनुष्य के वश में उसका मन एवं इन्द्रियाँ नहीं हैं, उसकी बुद्धि कभी स्थिर नहीं हो सकती। जो मनुष्य विचार और विवेक द्वारा सांसारिक भोगों की निस्सारता समझ चुका है वह अपने मन एवं इन्द्रियों को वश में रखता है तथा उन्हें अपने उच्चादर्शों की पूर्ति का साधन बना लेता है। संयमी मनुष्य इन्द्रियों

को भोग्य पदार्थों की ओर दौड़ते हुए देखकर उन्हें अपने भीतर ऐसे ही सरलतापूर्वक समेट लेता है, जैसे कछुआ बाहर बाधा देखकर अपने अङ्गों को भीतर समेट लेता है। उसे अपने ऊपर नियन्त्रण होता है तथा वह इन्द्रियों को उचित दिशा में व्यापार करने देता है, किन्तु उन्हें स्वेच्छाचार नहीं करने देता। यह विवेक, दृढ़निश्चय एवं अभ्यास द्वारा सम्भव है। कछुआ भीतर कोमल होकर भी बाहर कठोर होता है। इसी प्रकार कर्मयोगी भीतर कोमल होकर भी बाह्य प्रलोभनों के प्रति कठोर होता है। स्थितप्रज्ञ महात्मा भीतर आत्ममग्न रहता है तथा व्युत्थान अवस्था में (अर्थात् लोक-व्यवहार के समय) कच्छप की भाँति संयमी होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं कि हे अर्जुन! इन्द्रियाँ इतनी बलवती होती हैं कि वे साधनारत (प्रयत्नशील) बुद्धिमान् मनुष्य के भी मन का बलपूर्वक अपहरण कर लेती है। उन सभी को वश में करके समाहितचित्त होकर (परमात्मा से युक्त होकर) परमात्मापरायण हो जाना चाहिए, क्योंकि जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है (वह स्थितप्रज्ञ होता है)-

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथिनि हरन्ति प्रसभं मनः।।
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि मन ही आसक्ति के कारण इन्द्रियों को शिथिल कर देता है तथा मन का संयम ही इन्द्रियों का संयम है। इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर दौड़ने से रोकने का आशय मन को ही विषयों की आसक्ति से निवृत्त करना है। आत्मा के प्रकाश में अविद्या के नाश द्वारा बुद्धि का जागरण होने पर, बुद्धि सरलतापूर्वक मन और इन्द्रियों पर संयम कर लेती है।

अर्जुन का स्थितप्रज्ञ के विषय में चौथा प्रश्न था कि स्थितप्रज्ञ पुरुष कैसे बैठता है। इस प्रश्न का उत्तर श्रीभगवान् यह कहते हुए देते हैं कि यदि मन का निग्रह हो जाए तो फिर बाह्य इन्द्रियों का निग्रह न हो सके तो भी कोई बात नहीं है। अतएव सर्वप्रथम मन का निग्रह होना आवश्यक है। अर्जुन के इस चतुर्थ प्रश्न का उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार दिया है-

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिमच्छति।।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

अर्थात् राग और द्वेष से विमुक्त तथा अपने वश में की हुई इन्द्रियों (तथा मन) के द्वारा विषयों का उपभोग करते हुए आत्मसंयमी मनुष्य प्रसाद (निर्मलता एवं प्रसन्नता) को प्राप्त कर लेता है। प्रसाद (निर्मलता) प्राप्त करने से उसके समस्त दुःखों की समाप्ति हो जाती है, प्रसन्न एवं निर्मल चित्तवाले मनुष्य की बुद्धि अतिशीघ्र स्थिर हो जाती है।

स्थितप्रज्ञ विषयक प्रश्न के उत्तर का उपसंहार करते हुए श्रीभगवान् ने कहा-

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।।

अर्थात् जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर तथा ममता-रहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित (लालसारहित) होकर व्यवहार करता है, वह शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

संसार में सभी मनुष्य शान्ति चाहते हैं, किन्तु बिरले लोग ही शान्ति प्राप्त करते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को शान्ति प्राप्त करने का अमोघ उपाय बताते हैं, जिसका अनुसरण करने पर मनुष्य अविचल शान्ति प्राप्त कर सकता है। मन को कामनाओं से विमुक्त करना शान्ति का मार्ग है। कामना का शमन ही शान्ति है तथा मन को कामनाओं से ग्रस्त करना अशान्ति का मार्ग है। कामनाओं के शान्त होने पर मन और इन्द्रियों पर सरलता से संयम हो जाता है तथा मनुष्य को शान्ति प्राप्त हो जाती है। सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग परम शान्ति प्रदान कर देता है। कामना बन्धन का कारण है तथा कामनामुक्त मनुष्य स्वाधीन एवं मुक्त होता है।

परमात्मा के चरणों में अपने आपको अर्पित करने वाली के मन की समस्त कामनायें स्वतः समाप्त हो जाती हैं। ऐसा व्यक्ति सतत स्वतः परमात्मा में ही लीन रहता है। ऐसा व्यक्ति सांसारिकता से सदा अनासक्त रहता है। उसकी दृष्टि में सारी जागतिक वस्तुयें अनित्य और भंगुर हैं। शुभ-अशुभ,

प्रिय-अप्रिय, सुखद-दुःखद सारी स्थितियों में तटस्थ रहने वाला व्यक्ति स्थितप्रज्ञ कहलाता है। ऐसा व्यक्ति केवल इन्द्रिय-निग्रह ही नहीं करता, बल्कि वह परमात्मा-परायण भी होता है। अपनी समस्त इन्द्रियों को विषय-वासनाओं से खींचकर परमात्मा में लगा देता है। विना परमात्मापरायण हुए इन्द्रिय-निग्रह किसी के वश की बात नहीं है। मनुष्य की सारी इन्द्रियाँ मन के अधीन हैं। मन को भगवान् में लगा देने से सारी इन्द्रियाँ स्वतः भगवान् में ही रम जाती हैं। भगवान् में मन को रमते ही मनुष्य का सारा आचरण अनासक्त हो जाता है, उसकी आसक्ति केवल भगवद्भक्ति में होती है। फिर तो उसके लिए शत्रु-मित्र समस्तरीय हो जाते हैं। स्थितप्रज्ञ ही भगवान् का सच्चा भक्त होता है। उसी व्यक्ति की प्रज्ञा स्थिर मानी जाती है, जो इन्द्रियनिग्रह कर भगवान् के अधीन रहता है।

स्थितप्रज्ञ वह आदर्श पुरुष है, जिसमें ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय है। स्थितप्रज्ञ अनासक्त भाव से कर्म करता है। वह कर्मयोगी है। उसकी मन और बुद्धि सतत ईश्वर में तल्लीन रहती है; अतः वह परमात्मा का परम भक्त है। सुख-दुःख में उसके समान आचरण होते हैं; अतः वह ज्ञानी है। फलतः ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वित स्वरूप ही स्थितप्रज्ञ का स्वरूप है। जीवनमुक्त अनासक्त आचरण का प्रतीक स्थितप्रज्ञ कहलाता है।